ओ३म्

ब्रह्मचर्य के साधन

[द्वितीय भाग]

(चक्षु स्नान,उष:पान और शौच आदि)

लेखक:

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

प्रस्तुति:

दुर्लभ ज्ञान

ब्रह्मचर्य के साधन

[द्वितीय भाग]

(चक्षुःस्नान, उषःपान और शौच आदि)

१—चक्षुःस्नान

प्रातःकाल उठकर ईश्वरचिन्तन के पश्चात् चक्षुःस्नान करना चाहिए। जिसका विधि निम्न प्रकार से है:—

शुद्ध जल जो ताजा और वस्त्र से छना हुआ हो, लेकर इस से मुख को इतना भरलो कि उसमें और जल न आसके अर्थात् पूरा भरलो। इस जल को मुख में ही रखना है साथ ही दूसरे शुद्ध जल से दोनों आंखों में बार-बार छींटे दो जिससे रात्रि में शयन समय जो मल अथवा उष्णता आंखों में आजाती है वह सर्वथा दूर हो जाये। इस प्रकार इस क्रिया से अन्दर और बाहर दोनों ओर से चक्षु इन्द्रिय को ठंडक पहुँचती है। निरर्थक मल और उष्णता दूर होकर दृष्टि बढ़ती है। इस क्रिया को प्रतिदिन करना चाहिए।

यह क्रिया आंखों की ज्योति के लिए अत्यन्त लाभदायक है। इसको प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करने से नेत्रों के सब रोग दूर होकर वृद्धावस्था तक आंखों की ज्योति बनी रहती है।

२—उषःपान

इसके पश्चात् उषःपान करें। प्रातःकाल ४ बजे के पश्चात् जो जल शौच (मल, मूत्र त्याग) से पूर्व पीया जाता है उसे उषःपान कहते हैं।

उषःपान से पूर्व भलीभांति कुल्ली करके मुख नासिका आदि को साफ करना आवश्यक है। पहले दांतों को अगुली से भलीभांति रगड़कर दो तीन बार कुल्ला करें। फिर अंगूठे या उंगली से रगड़कर जीभ का तथा गले में नीचे ऊपर तथा दायें बायें लगा हुआ कफ आदि मल भली-भांति साफ कर डालें। नासिका के दोनों छिद्रों को भी जल से शुद्ध करलें। यदि नासिका और मुख को भलीभांति शुद्ध किये बिना उषःपान (जलपान) किया जायेगा तो रात्रि में शयनकाल में हमारे उदर से जो मल मुख के द्वारा बाहर निकलने के लिए आता है वह जल के साथ पुनः पेट में पहुंचकर गड़बड़ी करेगा।

उष:पान के प्रकार

उष:पान दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम नासिका द्वारा, दूसरा मुख के द्वारा। लाभ दोनों से ही होता है। पहले मुख द्वारा ही जल पीने का अभ्यास करना चाहिए। शनैः शनैः नासिका के द्वारा भी जल पीने का अभ्यास कर सकते हैं। किन्तु यदि नासिका से पीना हो तो बांयीं नासिका से धीरे-धीरे थोड़ा जल अन्दर जाने दें। इस जल को मुंह से थूक दें। इस प्रकार नासिका को शुद्ध करके नासिका से जल पीना चाहिए।

नासिका द्वारा जल पीने की विधि इस प्रकार है—

गिलास में या किसी जलपात्र में जिसके किनारे पतले हों, जल भर सुविधा पूर्वक बैठकर गिलास का किनारा बांयें नथुने (नाक) से लगाकर धीरे-धीरे जल अन्दर जानेदें। कण्ठ से घूंट खींचता जाये जल स्वयं ही भीतर जाने लगेगा। जलको श्वास की सहायता से न खीचें। बलपूर्वक यह क्रिया करने से जल का ठसका लग सकता है। आरम्भ में कुछ कष्ट होता है, किसी के तो आंखों में आंसू भी आजाते हैं। कुछ झनझनाहट सी उत्पन्न होती वा थोड़ा-सा प्रतिश्याय (जुकाम) भी प्रतीत होता है। किन्तु इससे घबराना नहीं चाहिए। पहिले दिन एक या दो तोला जल पीयें, फिर धीरे-धीरे बढ़ाते जावें। भावप्रकाश में २४ (चौबीस) तोले जल पीना लिखा है किन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार न्यून वा अधिक कर सकता है। किसी-किसी को वायु के कारण डकारें बहुत आती है। क्योंकि जल के साथ पेट में वायु भी जाती है। इससे घबराना नहीं चाहिए। दांईं नासिका से जल पीने से हानि कोई नहीं होती। बायें नथुने का चन्द्रस्वर होने से शीतलता और शांति रहती है। किसी को नासिका से जल पीने से कष्ट होता है तो मुख से ही पीता रहे।

जल पीकर मूत्रत्याग (लघुशंका) करें। यह सदैव ध्यान रखें कि प्रत्येक अवस्था में मल मूत्र त्याग से पूर्व ही उष:पान करना आवश्यक है। जल मीठा और शुद्ध होना चाहिए। कूयें का ताजा जल सदैव अच्छा होता है। उष्णकाल में सायंकाल का रखा हुआ पर्युषित (बासी) शुद्ध जल भी अच्छा होता है। बहुत ठण्डा और गर्म पानी हानि करता है। जिनको मलबन्ध (कब्ज) रहता हो वे सायंकाल तांबे के पात्र में जल रखदें और प्रातः उसका पान करें।

उषःपान के लाभ

उषःपान के अनेक लाभ आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखे हैं। धन्वन्तरिसंहिता में लिखा है—

सवितुः समुदयकाले प्रसृतिः सलिलस्य पिबेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम्॥

जो मनुष्य सूर्योदय से कुछ पहले आठ अञ्जलि जल पीता है रोग और बुढ़ापा उसके पास नहीं आते। वह सदैव स्वस्थ और युवा रहता है। उसकी आयु सौ वर्ष से भी अधिक है। भावप्रकाश में लिखा है—

अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकोष्ठमेदोविकाराः,
मूत्राघातास्त्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः।
ये चान्ये वातपित्तक्षतजकृता व्याधयः सन्ति जन्तोः,
तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः॥

बवासीर, सूजन, संग्रहणी ज्वर, पेट के अन्य रोग, बुढ़ापा, कुष्ठ, मेदरोग अर्थात् बहुत मोटा होना, पेशाब का रुकना, रक्तपित्त, आंख, कान, नासिका, सिर, कमर, गले इत्यादि के सब शूल (पीड़ा) तथा वात, पित्त, कफ और व्रण (फोड़े) इत्यादि होनेवाले अन्य सभी रोग उषःपान से दूर होते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर लिखा है—

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्रयमात्रया।
व्यङ्गवलिपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथहरम्।
रजीनक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिसञ्जनम्॥

नासिका द्वारा प्रतिदिन शुद्ध जल की तीन घूंट वा अञ्जलि प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में पीना चाहिये। क्योंकि इससे विकलाङ्ग, झुर्रियां पड़ना, बुढ़ापा, बालों का सफेद होना, पीनस (नाक का सड़ना वा नासिका में कीड़े पड़ना) आदि नासिकारोग, प्रतिश्याय (जुकाम), स्वर का बिगड़ना, विरसता, कास वा खांसी सूजनादि रोग नष्ट होजाते हैं और बुढ़ापा दूर होकर पुनः युवावस्था प्राप्त होती है। आयु की वृद्धि अर्थात् दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। चक्षुसम्बन्धी सब रोग दूर होते हैं और नेत्रज्योति, इस प्रकार जल-नेति करने से, खूब बढ़ती है। अतः ब्रह्मचारी तथा प्रत्येक स्वस्थ स्त्री वा पुरुष को प्रतिदिन मुख वा नासिका द्वारा उषःपान का अमृतपान करके अमूल्य लाभ उठाना चाहिये।

३—शौच

जल पीकर पहले लघुशंका (मूत्रत्याग) करें। तत्पश्चात् खुले जंगल में जाकर मल त्याग (शौच) करें। शौच के लिए ग्राम से जितना भी दूर जाओ उतना ही अच्छा है।

इसमें मनु जी महाराज का प्रमाण है—

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम्।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत्॥

(मनु० अध्याय ४ श्लोक १५१)

मल-मूत्र का त्याग, पैर धोना वा जूठन का फैंकना आदि कार्य घर वा निवास स्थान से दूर ही करें।

मनु जी की आज्ञा के अनुसार प्रातःकाल उत्तर की ओर और सायंकाल दक्षिण की ओर मुख करके शौच के लिये बैठें। जैसा कि आगे लिखा है। मुख तथा दांतों को बन्द रखें। बांयें पैर पर दबाव रखकर बैठना अच्छा है। इससे शौच खुलकर आता है। शौच के समय बल लगाना वा कांखना बहुत ही हानिकारक है। बल लगाने से वीर्य नष्ट होजाता है। जो मल (टट्टी) स्वयं आजावे वही ठीक है।

मल मूत्र रोकने से हानियां

मल-मूत्र के त्याग पर ब्रह्मचारी को पूरा ध्यान रखना चाहिये। सदैव सब कार्यों को छोड़कर उचित समय पर शौच जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कभी निश्चित समय पर शौच जाने की इच्छा भी न प्रतीत हो तब भी शौच के लिए अवश्य जाना चाहिये। भले ही मलविसर्जन (टट्टी) न भी हो, इस से मल की उष्णता कम होजाती है और हानि नहीं होती। किन्तु जो लोग इस बाट में बैठे रहते हैं कि शौच जाने की इच्छा जब होगी तब जायेंगे, उनका स्वभाव बिगड़ जाता है। मल की उष्णता से नेत्रों की ज्योति घटने लगती है, बल-वीर्य भी क्षीण होने लगता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य नष्ट होजाता है। भूख नहीं लगती। भोजन में अरुचि होजाती है। शिर में पीड़ा रहती है। इसी प्रकार और अन्य अनेक रोगों की उत्पत्ति होकर मनुष्य सदैव रोगी रहता है। महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुतसंहिता में लिखा है—

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जजनम्।
तदन्त्रकूजनाध्मानो-दरगौरववारणम्॥

(सुश्रुतसंहिता। चिकित्सास्थान। अध्याय २४ श्लोक)

प्रातःकाल (उषःकाल) में मल-मूत्र के त्याग से आयु बढ़ती है और आंतों

का गुड़गुड़ाना, पेट का फूलना और भारीपन आदि रोग दूर होते हैं। जो प्रातःकाल शौच न जाकर देर से मलमूत्र त्याग करते हैं उनके पेट में मल भीतर-भीतर सड़कर अत्यन्त दुर्गन्धियुक्त और विषैला होजाता है। गुदा में कतरनी (कैंची) से काटने के समान पीड़ा होने लगती है। अपानवायु बिगड़कर उसकी ऊर्ध्वगति होजाती है। जिससे मल भी ऊपर को चढ़ने लगता है और वह फिर जठराग्नि में जाकर पचने लगता है। उससे सारे शरीर का रक्त दूषित होजाता है। शौच भी खुलकर नहीं आता। पेट में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होकर भयंकर शूल (पीड़ा) होने लगती है। कभी कभी तो मुख से भी मल निकलने लगता है। इसी प्रकार वायु के अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं। इसीलिए तो लिखा है कि "**सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।**" संसार में जितने भी रोग हैं उन सबकी उत्पत्ति मल के कुपित होने से होती है। जिस मल के बाहर निकालने पर ऐसी भयंकर दुर्गन्ध आती है कि सब कोई उससे दूर भागता है। फिर वह अन्दर पड़ा हुआ क्या सुगन्ध देगा ? मल-मूत्र को रोकनेवाला मनुष्य कैसे सुखी और स्वस्थ रह सकता है यह विचारने की बात है। इसलिए ब्रह्मचारी को किसी कार्य में फंसकर, मोह लज्जा वा भय के कारण, जाड़े में शीत के डर से अथवा आलस्य से मल मूत्रादि के वेग को नहीं रोकना चाहिए। कितना भी आवश्यक कार्य क्यों न हो, उसको छोड़कर तुरन्त ही मल का त्याग करना चाहिए। इस कार्य को सबसे आवश्यक समझें।

जो ब्रह्मचारी उपर्युक्त बातों का ध्यान न रखकर मल-मूत्र के त्याग में आलस्य और प्रमाद करेगा तो अपने ब्रह्मचर्य को खो बैठेगा। क्योंकि मल-मूत्र की उष्णता से सारे शरीर में उष्णता और विष फैल जाता है। इन्द्रियां क्षुब्ध और चंचल हो उठती हैं। इन्द्रियों में अस्वाभाविक क्षुब्धता और उत्तेजना के कारण मनुष्य रोगी और कामी बन जाता है। जिससे वीर्य दूषित होकर अनर्थों और रोगों का मुख देखना पड़ता है। ठीक समय पर मलमूत्र के त्याग और शौच के साफ होजाने से दिन, प्रतिदिन स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता, तेज, पराक्रम, स्मृति, बुद्धि आदि सद्गुणों की वृद्धि होती है और वीर्य अत्यन्त शुद्ध और विकाररहित होजाता है। जिससे ब्रह्मचर्य में कोई बाधा नहीं होती।

पहले लिखा जा चुका हैकि मलमूत्र की उष्णता से वीर्य का नाश हो जाता है। वीर्य नाश करना मानो अपने स्वास्थ्य पर कुल्हाड़ा चलाना है। कहा भी है—

'धातुक्षयादृते रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः।'

वीर्यनाश से रक्त आदि धातुएं भी निर्बल, दूषित और नष्ट होजाती हैं और **"वीर्यं वै बलम्"** वीर्य के अभाव में, जो बल का भण्डार है, जठराग्नि भी मन्द पड़कर अपना कार्य करना छोड़ देती है। क्योंकि वीर्य तथा रक्त आदि धातुओं के संचार (उष्णता) से ही शरीर के अवयवों में कार्य करने की शक्ति रहती है। इनके अभाव में सब कार्य बिगड़ जाता है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा (Current) के बन्द होने से सारा कारखाना बन्द होजाता है, इसी प्रकार वीर्य के नाश से शरीर का सारा कार्य बन्द होजाता है। पुनः जठराग्नि का मन्द पड़ना और आंतों का दुर्बल होना स्वाभाविक ही है और जब आंत और जठराग्नि अपना ठीक कार्य नहीं करती तो मलावरोध वा मलबद्धता (कब्ज) का रोग स्थिररूप से होजाता है और यही वीर्यनाश का मुख्य हेतु है; स्वप्नदोष, प्रमेह आदि भयंकर रोगों का जन्मदाता है। जिनके पेट में मल पड़ा रहता है, स्वप्नदोष तो ऐसे ही लोगों के साथ मित्रता गांठता है। इसलिए मल, मूत्र, अपानवायु आदि वेगों को रोकने से हानि ही है, लाभ कुछ नहीं।

मूत्र के वेग को रोकने से भी मूत्रेन्द्रिय और पेट में पीड़ा होने लगती है। मूत्र में जलन, शिर में पीड़ा, यहां तक कि वीर्यनाश भी होने लगता है। मूत्र के वेग को रोकने से मूत्र में पहली धातु रस, जिसका रंग श्वेत होता है आने लगती है। रस से जो रक्त आदि अन्य धातुएं बनती हैं उनका बनना बन्द होजाता है। जब शरीर को हृष्ट-पुष्ट और धारण करनेवाली धातुएं ही नहीं बनतीं तो शरीर का ह्रास (नाश) अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार रात्रि में सोते समय शीत वा आलस्य के कारण जो मूत्र के वेग को रोक लेता है, उसे मूत्र की उष्णता से स्वप्नदोष वा वीर्यनाश हो जाता है।

इसी प्रकार मल को रोकने से जिन रोगों की उत्पत्ति होती है लगभग वे ही रोग अपानवायु के रोकने से भी उत्पन्न होते हैं। **'न वेगान् धारयेद्धीमान् जातान् मूत्रपुरीषयोः।'** [चरक० सूत्रस्थान अ० ७ श्लोक २] मल, मूत्र, अपानवायु [पाद], छींक, डकार; जम्भाई आदि वेगों को किसी भी अवस्था में ब्रह्मचारी वा किसी भी मनुष्य को नहीं रोकना चाहिए। रोकने के लिए तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, भय, चिन्ता, अहंकार आदि मन के वेग ही बहुत हैं। इनके रोकने का

यत्न करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने भी चरकशास्त्र में इसी प्रकार लिखा है—

लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत् ॥२७॥

देहप्रवृत्तिर्या काचिद्वर्तते परपीडया।

स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत् ॥२८॥

(चरकसंहिता सू० अ० ७)

लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान, अहंकार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अतिराग और परधन में इच्छा आदि वेगों को रोकना चाहिए। और जो कोई भी शारीरिक वेग दूसरों को पीड़ा देनेवाले हों, उनको भी रोकना चाहिए। क्योंकि इनके रोकने में ही लाभ है। मल, मूत्र आदि शारीरिक वेगों को रोकना महामूर्खता तथा ब्रह्मचर्य के लिए अत्यन्त घातक है। अतः ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्यरक्षा के लिए प्रातः और सायं दोनों समय नियत समय पर मल-मूत्र का त्याग करना ब्रह्मचारी का ही नहीं, अपितु सबका परम कर्त्तव्य है। शौच न आये तब भी दोनों समय जाना चाहिए। यदि किसी समय शौच न भी आये तो बहुत चिन्ता न करनी चाहिए और बल लगाकर (किणछ-किणछ कर) मल निकालने का यत्न नहीं करना चाहिए। यह ढंग अच्छा नहीं है। इससे निर्बल धातु (वीर्य) उष्णता पाकर मूत्रेन्द्रिय के द्वारा निकल पड़ता है। जिससे आंतें निर्बल हो शौच साफ होने के स्थान पर उल्टी मलबद्धता (कब्ज) और अधिक होजाती है।

यदि शौच न आये तो

यदि शौच खुलकर नहीं आता और स्थायी मलबद्ध (कब्ज) का रोग रहता है तो जल पीकर शौच जाने से पूर्व पेट के **पश्चिमोत्तान आसन, मयूर आसन** आदि आसन तथा अन्य हल्के व्यायाम करें। पेट को खूब हिलायें तदनन्तर शौच जायें। मार्ग में जाते समय मन में यह दृढ़ निश्चय करें कि मुझे शीघ्र शौच आरहा है और यदि मैं तीव्र गति से नहीं चला तो मार्ग में ही मल निकलकर वस्त्र खराब होजायेंगे। मल त्याग के लिए बैठजाने पर भी इसी प्रकार का ध्यान करें कि सब मल गुदाद्वार के द्वारा बाहर निकल रहा है। ऐसा करने से मलबद्ध नहीं होगा। ऐसे दृढ़ निश्चय और ध्यान का हमारे शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसे हंसी समझकर टाल न दें, यथार्थ में हम शरीर के स्वामी न बनकर दास बने हुये हैं। इसलिए अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

मलद्वार की शुद्धि

शौच जाते समय पर्याप्त बड़ा जलपात्र शुद्ध जल का भरा हुआ अवश्य ही साथ ले जावें। पर्याप्त जल से भरे जल-पात्र के बिना जाना महामूर्खता है। जो लोग जल-पात्र साथ नहीं लेजाते वे इतस्ततः पड़े हुए गन्दे जल से मलद्वार को शुद्ध करते हैं जिससे बवासीर आदि अनेक रोग होजाते हैं। कोई-कोई ऐसे पक्के बाबू जी होते हैं जो जल से धोने का कष्ट ही नहीं करते। कागज या कपड़े से पोंछकर फेंक देते हैं जोकि अत्यन्त हानिकारक है। शौच वा मल-त्याग करने के पश्चात् जल से गुदाद्वार को धोने की रीति सारे भारतवर्ष में प्रचलित है किन्तु बहुत थोड़े लोग हैं जो यथार्थ में मलद्वार की शुद्धि करना जानते हैं। प्रायः शौच के समय अधिक से अधिक एक सेर जल का प्रयोग करते हैं। कोई-कोई तो एक पाव जल से काम चला लेते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि एक पाव पानी से पायु (गुदाद्वार) की कैसे शुद्धि हो सकती है, जबकि किसी विशेष अवस्था में एक घड़े से भी काम नहीं चलता। वैसे तो यह साधारणसा कार्य लगता है, किन्तु बहुत थोड़े व्यक्ति हैं जो मलद्वार की यथार्थ शुद्धि के ढंग वा प्रकार को जानते हैं। इसलिए यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

''बुद्धिमान् बना फिरता है, हगकर (शौच के) हाथ भी धोने नहीं आते।'' जब किसी की मूर्खता सिद्ध करनी हो तो इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

पाठक! क्षमा करें। जो अधिक पढ़े लिखे हैं वे इस विषय में अधिक मूर्ख हैं। यदि इस मूर्खता के साक्षात् दर्शन करना चाहो तो शहर के सभी परिवारों तथा कालिजों के छात्रवासों में प्रतिदिन होसकते हैं। शहर में एक गृहस्थ का परिवार सारा का सारा एक गन्दे तामलेट (जिसे न कभी धोते हैं, न मिट्टी से माँजते हैं) से वर्षों कार्य चलाता रहता है। इसी तरह कालिजों के छात्र इस धोने-मांजने के कष्ट से बचने के लिए शीशे की बोतल का प्रयोग करते हैं। किन्तु इस प्रकार की छोटी-छोटी भूलों से उन्हें और भी अधिक कष्ट सहने पड़ते हैं। प्रमाद वा अज्ञान ही इसका कारण है।

लोग यह नहीं जानते कि गुदा मल के निकलने का मार्ग है, इसके रहने का स्थान नहीं। साधारण लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं कि शौच के बाद गुदा के अन्दर मल रह जाता है, जो गुदा को थोड़ेसे जल से केवल बाहर से धोने से दूर नहीं होसकता और यही मल गुदा के अन्दर पड़ा रहकर सड़ता रहता है। इसी प्रकार बहुत समय तक प्रमाद वा अज्ञान से शुद्धि न होने के कारण अर्श (बवासीर)

नासूर और भगन्दर जैसे भयंकर रोग उत्पन्न होजाते हैं, जिन में आज संसार फंसा हुआ है। इसलिए महर्षि पतञ्जलि ने चरक में लिखा है-

मेध्यं पवित्रमायुष्य-मलक्ष्मीकलिनाशनम्।
पादयोर्मलमार्गाणां शौचाधानमभीक्ष्णशः॥

(चरकसंहिता सूत्रस्थान। अध्याय ५। श्लोग ९५)

पाद (पैर) मलमर्गों (नाक, कान, गुदा, उपस्थेन्द्रिय आदि) को प्रतिदिन बारम्बार मलरहित वा शुद्ध करने से, धोने से, बुद्धि, पवित्रता तथा आयु की वृद्धि होती है। दरिद्रता, पाप तथा रोगों का नाश होता है।

जबकि भारत में पाश्चात्य सभ्यता ने पग नहीं फैलाये थे उस समय तक चरक के इस श्लोक की महिमा का लोगों को भलीभांति ज्ञान था। उस समय काला मैन (मनुष्य) जमीन पर हगनेवाला, मिट्टी से हाथ मांजनेवाला प्राचीन सभ्यता का भक्त, कोट, बूट, पतलून आदि अप्राकृतिक वस्तुओं से भले ही अपरिचित था, किन्तु स्वास्थ्य और चरित्ररूपी धन का धनी तथा बल वा शक्ति का भण्डार था। आज भी जो मनुष्य प्राचीन ढंग का प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, सौभाग्य से पाश्चात्य सभ्यता का भूत जिनके सिर पर सवार नहीं है, वे अब भी इस श्लोक के महत्त्व को भलीभांति समझते और इसके अनुसार श्रद्धापूर्वक आचरण करके पूर्ण लाभ उठाते हैं। मल-मूत्र के मार्गों की शुद्धि की इतनी ही आवश्यकता है कि जितनी भोजन के पश्चात् मुख और दांतों की तथा आंख, नाक, कान आदि शरीर के अन्य अंगों की शुद्धि की आवश्यकता है। क्योंकि ये भी तो शरीर के आवश्यक अंग हैं। जिस प्रकार मुख, नासिका आदि के गन्दा रहने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मल-मूत्र के मार्गों की यथार्थशुद्धि के अभाव में अनेक भयंकर रोगों का जन्म होता है। इसलिए महर्षि चरक की आज्ञानुसार शौच के पश्चात् गुदाद्वार की अन्दर और बाहर से भलीभांति जल आदि से शुद्धि करना अनिवार्य है।

शुद्धि का प्रकार

गुदा के अन्दर वाम (उल्टे) हस्त की अंगूठे के साथवाली अंगुली प्रविष्ट करके गुदा के अन्दर अंगुली को चारों ओर घुमाकर जो मल गुदा के अन्दर भित्तियों (गुदाचक्रों) में लग रहा हो, दायें हाथ से जल डाल-डाल कर भलीभांति

शुद्ध कर डालें। तत्पश्चात् मिट्टी लगाकर अनेक बार जल से धोयें। पुनः अपने स्थान पर जाकर मिट्टी लगाकर दोनों हाथों को तथा पीछे जलपात्र को मिट्टी तथा जल से इतना मांजना वा धोना चाहिए कि मल-मूत्र की किंचिन्मात्र भी दुर्गन्ध शेष न रहे। इस प्रकार मलद्वार की शुद्धि के अनेक लाभ हैं।

मलद्वार की शुद्धि के लाभ

उपर्युक्त क्रिया को हठयोगी प्रतिदिन करते हैं। उनकी परिभाषा में इसका नाम "**गणेशक्रिया**" है। इसको प्रतिदिन करने से मलबद्धता (कब्ज) कभी नहीं होती अर्थात् मलविसर्जन की क्रिया ठीक होती है। जिनको मलबद्धता (कब्ज) रहती है उनको भी शौच खुलकर आने लगता है। शरीर और मन दोनों निर्मल होकर चित्त प्रसन्न और शान्त रहता है। मस्तिष्क की ओर गन्दे परमाणु नहीं जाने पाते। इसलिए मस्तिष्क ठंडा और मन एकाग्र रहता है। आलस्य नाम को भी नहीं रहता। सदैव स्फूर्ति और उत्साह बना रहता है। गुदाद्वार की शुद्धि से सबसे बड़ा लाभ यह होता हैकि इससे वीर्य में शीतलता आती है। क्योंकि वीर्य-वाहक नाड़ियां गुदाद्वार से ही होकर बाहर आती हैं। इसलिये ब्रह्मचर्यरक्षा में बड़ी सहायता मिलती है और मूत्राशय (मसाना) तथा बवासीर, भगन्दर आदि गुदा के रोग कोसों दूर रहते हैं।

शुद्धि के विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं—

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत्।
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि॥

(मनु० अध्याय ५ श्लोक १३४)

मल-मूत्र के त्याग और शरीर के बाहरी मलों की शुद्धि के लिए उतनी मृत्तिका (मिट्टी) और जल लेवे जितने से दुर्गन्धादि मिट सके।

बारह मल ये हैं—

वसाशुक्रमसृङ्मज्जा-मूत्रविड्घ्राणकर्णविट्।
श्लेष्माश्रु दूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता॥

(मनु० अध्याय ५ श्लोक १३५-१३६॥)

वसा (चर्बी), वीर्य, रक्त, मज्जा, रक्त, मूत्र, विष्ठा, नाक का मैल, कान का

मैल, कफ, आंसू, आंख का मैल और पसीना—ये मनुष्यों के बाहर के मल हैं। शुद्धि को चाहनेवाला मनुष्य मूत्र की जगह एक बार, गुदा में तीन बार, बांये हाथ में दश बार तथा दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगावे।

मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि

महर्षि चरक की आज्ञानुसार सभी मलमार्गों की शुद्धि करनी आवश्यक है। शौच के समय ही मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि भी प्रतिदिन करनी चाहिये। इसमें प्रमाद न करें। जल स्वयं स्वाभाविक रूप से मैल को शुद्ध करनेवाली वस्तु है। मूत्रन्द्रिय के आन्तरिक भाग को तो मूत्र ही, जल के ही कुछ परिवर्तित रूप में प्रतिदिन आता हुआ साफ करता है और स्वयं भी बाहर आजाता है। किन्तु मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग को त्वचा ढके रहती है। इसके नीचे एक प्रकार की सफेद वस्तु, जो मैल है, पैदा होती रहती है, शुद्ध न किया जाये तो यह वस्तु भीतर एकत्रित होकर खुजली पैदा करती है और इसे स्वाभाविक रूप से बालक खुजाने लगता है और यही से दोष उत्पन्न होता है। यह क्रिया अनेक भयंकर दोषों व सर्वनाश का कारण बनती है। इसलिए शौच के समय अथवा मूत्रत्याग के समय मूत्रेन्द्रिय के सिरे की त्वचा (चर्म) पीछे हटाकर इस गन्दे मैल को प्रतिदिनि जल से सर्वथा धोडालें। इसे कभी एकत्रित न होने दें। मूत्रेन्द्रिय के धोते समय ब्रह्मचारी कभी अधिक घर्षण न करे क्योंकि रगड़ने से इन्द्रिय में उत्तेजना उत्पन्न होकर वीर्यनाश की सम्भावना रहती है।

मूत्रेन्द्रिय-स्नान

मूत्रेन्द्रिय के सिरे के भीतरी भाग में जो छिद्र होता है जिसमें से पेशाब निकलता है, ठीक इसी छिद्र के ऊपर शीतल जल की बहुत पतली धार प्रतिदिन अनेक बार डालनी चाहिये, दो-तीन मिनट तक इस धार को निरन्तर डालने से अत्यधिक लाभ होता है। मूत्रेन्द्रिय में सब शिरायें (नसें) इकट्ठी होजाती हैं, अथवा यों समझना चाहिये कि हमारे शरीर के सब ज्ञानतन्तुओं का केन्द्र वा मूल है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ों को जल देने से सारा वृक्ष हरा-भरा रहता है और उसको शक्ति मिलती है उसी प्रकार शीतलजल की धारा से मूत्रेन्द्रिय के ठण्डा होने से सम्पूर्ण शरीर में शीतलता आजाती है और एक विशेष शान्ति मिलती है। इसके विपरीत दुष्टविचार वा कुचेष्टा के कारण यदि मूत्रेन्द्रिय में उत्तेजना वा उष्णता आजाती है तो सारे शरीर में उष्णता वा अग्नि उत्पन्न होजाती है जो वीर्य

नाश का कारण बनती है। इसलिये मूत्रेन्द्रिय को जब-जब मूत्रत्याग करें, शीतल जल से धोडालें। इस प्रकार दिन में अनेक बार मूत्रेन्द्रियस्नान करने से अत्यन्त लाभ होगा।

ऋषियों ने इसलिए मूत्रत्याग करते समय जलपात्र साथ लेजाना लिखा है। इस नियम में वीर्यरक्षा का बड़ा भारी रहस्य भरा है। इन्द्रियस्नान के समय शीतल जल की धार डालने के पश्चात् समस्त मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोषों को भली-भांति शीतल जल से शुद्ध और शीतल कर देना चाहिए। शौच तथा मूत्रेन्द्रियस्नान के लिये उष्ण (गरम) जल का कदापि भूलकर भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि और स्नान से स्वप्नदोष, प्रमेह (शौच के समय या मूत्रत्याग के समय वीर्य का आना) आदि रोगों से पिण्ड छूट जाता है। इनके होने की सम्भावना ही नहीं होती। कितने ही स्वप्नदोष के रोगी केवल इसी क्रिया से स्वस्थ होते देखे गये हैं। पचास प्रतिशत लाभ प्रायः सभी रोगियों को होजाता है। इस छोटीसी क्रिया से मूत्रेन्द्रिय की व्यर्थ की उत्तेजना समाप्त होकर वीर्य में स्तम्भनशक्ति और गाढापन आता है। मन की चञ्चलता मिटती है। जलती हुई कामाग्नि भी शान्त होजाती है। कामरिपु पुंछ दबाकर भाग जाता है। किन्तु एक बात का सदैव ध्यान रखें कि बिना किसी कारण के मूत्रेन्द्रिय का स्पर्श कभी भूलकर भी न करें। मूत्रेन्द्रियशुद्धि अथवा मूत्रत्याग के समय जब कभी इसको छूए उसी समय ओ३म् का जाप आरम्भ करदें।

भाव पवित्र और ऊंचे रखें। मूत्रेन्द्रिय काली नाग के समान है। ओ३म् का जाप (पवित्र विचारों सहित) नागदमन बूंटी है। अतः जब भी आवश्यकतावश मूत्रेन्द्रिय को स्पर्श करना पड़े तो उसी समय ओ३म् का जाप भी साथ-साथ आरम्भ करदें। इसे व्यर्थ में स्पर्श करना मृत्यु को बुलाना है, यह सदैव याद रखें। इसे व्यर्थ में स्पर्श करना, मर्दन करना, विनाश का ही कारण बनता है। इसीलिए तो महर्षि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है "उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करे"। प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द जी महाराज ने यह वाक्य लिखकर हमें कितना सावधान किया है। आज मूत्रेन्द्रियरूपी विषैले नाग को व्यर्थ छेड़कर संसार की कितनी हानि वा विनाश हुआ है इसका विचारमात्र आते ही रोना आता है। अतः मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि वा स्नान तथा मल मूत्र त्याग के समय आवश्यकता पड़ने पर ही मूत्रेन्द्रिय को स्पर्श करें किन्तु उस समय भी शुद्ध विचार और पवित्र भावना

रखें नहीं तो लाभ के स्थान पर हानि भी होसकती है। मूत्रेन्द्रियस्नान वा इसकी शुद्धि ब्रह्मचारी ही नहीं किन्तु प्रत्येक ब्रह्मचर्यप्रेमी व्यक्ति को प्रतिदिन करनी चाहिए। मूत्रेन्द्रिय के बाह्यभाग को मिट्टी लगाकर जल से प्रतिदिन शुद्ध करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन करने से अनेक प्रकार के वीर्यसम्बन्धी रोगों से ब्रह्मचारी बचा रहता है। अत: इसको व्यर्थ साधारण समझकर टालना नहीं चाहिए, किन्तु अपनी दिनचर्या का इसे अङ्ग समझकर प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करना चाहिए।

साबुन का प्रयोग

जल और मृत्तिका शुद्धि के लिए सर्वोत्तम हैं किन्तु आज का संसार निराला है, वह अपने ही ढंग से चलता है। इसीलिए अंग्रेजी फैशन के लोग प्राय: शौच के पश्चात् हाथ शुद्ध करने के लिए साबुन का प्रयोग करते हैं। साबुन के प्रयोग के साधारणसी शुद्धि तो होजाती है, किन्तु इससे रूक्षता खूब बढ़ती है और धन भी अधिक व्यय होता है। साबुन का प्रयोग करनेवाले भलीभांति जानते हैं कि साबुन से हाथ धोने वा स्नान के पश्चात् हाथ आदि शरीर के अंग कितने रूक्ष होजाते हैं और जो शुद्धि मिट्टी मलकर हाथ धाने से होती है वह साबुन से कभी नहीं होसकती। क्योंकि मिट्टी का स्वाभाविक गुण गंध है। इसलिए जितनी दुर्गन्ध को दूर करने की शक्ति मिट्टी में है उतनी अन्य किसी पदार्थ में नहीं और जिस प्रकार बिना संकोच के हम अधिक मिट्टी का उदारता से प्रयोग कर सकते हैं, साबुन का उस प्रकार प्रयोग करने में चाहे कोई कितना ही धनाढ्य क्यों न हो, संकोच ही करता है, क्योंकि इसमें धन का अधिक व्यय है। दुर्भाग्य से हमारे देश में जितना साबुन का प्रयोग बढ़ता जारहा है उतनी ही त्वचा (चर्म) रोगों की वृद्धि होरही है। लाहौरसोर, लोकलसोर, मुगलीफोड़ा, चम्बल आदि विचित्र रोग जिनका कभी नाम भी सुनने में नहीं आता था, आज वे इस साबुन की कृपा से नगरों में ही नहीं छोटे-छोटे ग्रामों में भी पहुंच गये हैं और विशेषकर दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, अमृतसर आदि बड़े-बड़े नगरों में जहां झूठी जैण्टिलमैनी ने खूब पग फैला रखें हैं और लोगों के सिर पर फैशन का भूत बुरी तरह चढ़ा है, जहां लोग सारे दिन यों ही निष्कारण साबुन का प्रयोग करते रहते हैं, वहां पामा (खुजली), दद्रु (दाद), चम्बल, लोकलसोर आदि चर्मरोगों का राज्य है। अंग्रेजी ढंग के साबुनों में प्राय: पशुओं की मेद (चर्बी) भी पड़ती है, जो चर्मरोगग्रस्त पशुओं की भी होती है। और सोडा कास्टिक जिससे साबुन बनता है; यह अत्यन्त तीक्ष्ण होता है और जो त्वचा के लिए अत्यन्त हानिकारक है, यहाँ तक कि शरीर के चर्म को जला ही डालता है। इसलिए

स्वास्थ्यप्रिय मनुष्य को फैशन के कारण स्नान तथा हाथ आदि के धोने में साबुन के प्रयोग की मूर्खता नहीं करनी चाहिए। इसमें हानि ही हानि है लाभ कोई नहीं। शरीरशुद्धि बिना साबुन के भी भलीभांति किस प्रकार हो सकती है इसके लिए पुस्तक का स्नानसम्बन्धी भाग पढ़ें।

शौचसम्बन्धी आवश्यक बातें

मल-मूत्र के त्याग के विषय में मनु जी का आदेश-

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे।
न फालकाष्ठे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥४५॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥४६॥

(मनु० अ० ४)

मार्ग, राख, गोशाला वा गोचरभूमि में मूत्रत्याग (पेशाब) न करें। हल से जुते हुए खेत में, जल में, चिता में, ऊँचे टीलों, पुरानी (टूटी फूटी) यज्ञशाला वा मन्दिर में, बम्बी आदि कीड़ों के बिलों में कदापि मल-मूत्र त्याग न करें।

मुनिवर चाणक्य अपने कौटिलीय अर्थशास्त्र में लिखते हैं-

'नाप्सु मूत्रं कुर्यात्'(सूत्र ४०६)

अर्थात् जल में मूत्र न करें।

आजकल के लोग ऋषियों की इस पवित्र शिक्षा पर ध्यान नहीं देते और निर्लज्ज होकर ऊँचे टीलों और मार्गों पर ही मल मूत्र त्याग करते देखे जाते हैं। न ही इन्हें यज्ञशाला मन्दिरादि पवित्र धार्मिकस्थानों में श्रद्धा है। गोशाला वा गोचरभूमि में मलत्याग न करने के महत्त्व को तो ये समझ ही क्या सकते हैं। ऐसे लोगों की ही कृपा से तो गाय आदि पवित्र पशु भी मलभक्षण करने लगे हैं। कीड़े मकोड़े आदि क्षुद्रप्राणियों के बिलों वा बम्बी पर भय के कारण भले ही मल-मूत्र त्याग न करें, वैसे संकोच कोई नहीं। उपर्युक्त वर्जित स्थानों पर मल-मूत्र त्याग करने से पवित्र धार्मिकस्थानों की पवित्रता नष्ट होजाती है। गायों का चारा, अन्न, जल आदि दूषित होकर स्वास्थ्य को बिगाड़ने का कारण बनते हैं और जल वायु दूषित होकर अन्य सभी प्राणियों को हानि पहुँचती है। बम्बी और बिल आदि पर मल-मूत्र त्याग की मूर्खता करने से सर्पादि विषैले जन्तुओं से काटे हुए मूर्खों के दर्शन मैंने किये हैं। अतः ऐसे वर्जितस्थानों पर मल-मूत्र त्याग करने से हानि के अतिरिक्त लाभ कोई नहीं होता। कितने अनपढ़ ही नहीं, पढ़े-लिखे बाबू भी निर्लज्ज होजाते हैं। जान बूझकर ऊँचे ऊँचे स्थानों पर, हर समय चलनेवाले मार्गों के ऊपर वा अत्यन्त

समीप नीचा सिर करके मलत्याग के लिए बैठ जाते हैं और '**नीचे गर्दन झुकाई सिर से ऊँची खाई**' इस लोकोक्ति को पूर्ण करने की धृष्टता करते हुए किंचित् भी लज्जित नहीं होते। जब मनुष्य निर्लज्ज होजाता है तो वर्जितस्थानों पर मल-मूत्र त्याग की तो साधारण सी बात है वह न जाने क्या-क्या कुकृत्य कर डालता है। मुझे भलीभांति स्मरण है ऐसा ही कोई नीच मनुष्य यज्ञवेदी पर मल त्याग करके अपना मुंह काला कर गया था। इसी प्रकार मल मूत्र त्याग के विषय में मनु जी महाराज अन्त आदेश देते हैं-

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके॥
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥

(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ४७-४८)

जिनमें जीव रहते हों ऐसे गड्ढों में, चलते-चलते तथा खड़े-खड़े नदी आदि जलाशय के तट पर और पर्वत की चोटी पर मल-मूत्र न त्यागे। वायु, अग्नि विप्र (विद्वान् वा मेधावी पुरुष) सूर्य, जल और गौ को देखते हुआ मल-मूत्र का त्याग कदापि न करे।

जिन गड्ढों में जीव रहते हैं उन में मल-मूत्र त्याग करने से जहां उन प्राणियों को हानि और कष्ट होता है वहां ऐसा करनेवाला स्वयं भी हानि उठा सकता है जैसा मैं पहले लिख चूका हूं।

खड़े खड़े या चलते हुए मल-मूत्र त्याग करना सभ्यता और स्वास्थ्य के विरुद्ध है और इस प्रकार करने से मल-मूत्र का त्याग भलिभान्ति होता ही नहीं। किन्तु ऋषियों की शिक्षा के विरुद्ध चलने का स्वभाव आजकल के अंग्रेजी पढ़े बाबुओं का है ही। इस प्रकार नदी के तीर और पर्वत के शिखर पर मल-मूत्र का त्याग करने से पवित्र जल और दिव्य जड़ी बूटियां दूषित होकर आरोग्य प्रदान करने के स्थान पर हानिकारक सिद्ध होती हैं। उपकार के स्थान पर हानि करना मनुष्य का धर्म नहीं।

अग्नि, वायु, जल, और सूर्य को देखते हुए मल मूत्र त्याग करने से सीप आदि अनेक चरमरोगों के होने से मनुष्य कष्ट पाता है।

विप्र विद्वान् मेधावी पुरुष और गोमाता आदि जिनको मनुष्य अपना पूज्य समझता है उनकी ओर देखते हुए मल-मूत्र त्याग करने से जो श्रद्धा और आदर

की भावना अनके प्रति है वह नहीं रहती, इस से मनुष्य निर्लज्ज होकर और भी अनेक प्रकार के कुकृत्य करने लगता है। भय और लज्जा के कारण भी मनुष्य बहुत से पापों से बचा रहता है, अतः उपर्युक्त वर्जितस्थानों पर मल-मूत्र त्याग कदापि नहीं करना चाहिए। ऐसा जो करते हैं वे मनुष्य नहीं, उन्हें पशुओं का बड़ा भाई समझना चाहिए।

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठ-लोष्टपत्रतृणादिना।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः॥

(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ४९)

लकड़ी, मिट्टी तथा तृण (झाड़ी वृक्षादि) की आड़ में बैठकर वस्त्र से गुप्त अङ्गों को ढककर तथा मस्तक वा सिर को बाँधकर प्रतिदिन नियम से मौन होकर मल मूत्र का त्याग करना चाहिए।

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा॥

(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५०)

दिन में उत्तर की ओर मुख करके, रात्रि में दक्षिण की ओर, और सायं प्रातः भी दिन के समान (उत्तर की ओर) मुख करके मल मूत्र का त्याग करे।

मनु जी महाराज ने किस प्रकार, किस स्थान पर किस वस्तु के पीछे छिप कर वा आड़ लेकर मल मूत्र का त्याग करना चाहिए यह भी स्पष्ट कर दिया है। प्रातः सायं, दिन और रात में किस दिशा में मुख करना चाहिए यह भी स्पष्टतया लिख दिया है। इस विषय में कोई कोई यह लिखते हैं कि जिधर की वायु चलती है उधर मुख करना चाहिए।

विशेष अवस्थाओं में मल मूत्र त्याग करने के विषय में मनु जी महाराज निम्नलिखित विधान करते हैं—

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु॥

(मनु० अ० ४ श्लोक ५१)

भित्ति वा मेघ की छाया में, रात्रि, आंधी तथा मेघादि द्वारा हुए विशेष अन्धकार में, शारीरिक क्लेश अथवा किसी प्रकार की आपत्ति आजाने का भय हो, ऐसी अवस्थाओं में द्विज रात वा दिन के समय में दिशा का ज्ञान न होने पर चाहे जिधर को मुख करके मल मूत्र त्यागे।

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥

(मनु० अ०४ श्लोक ५२)

अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, द्विज, गौ और वायु के सम्मुख मूत्र त्यागनेवाले की निर्मल बुद्धि मलिन और नष्ट होजाती है। इस विषय में पहले भी लिख चुका की मनु जी महाराज की इस आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने से मनुष्य को अनेक रोग होजाते हैं। रोगी मनुष्य की बुद्धि तो बिगड़नी ही हुई, जो बुद्धि ही नहीं रही तो इससे बढ़कर और क्या हानि होगी ?

"बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्"

बुद्धि का बल सबसे बड़ा बल है। इसे खोकर मनुष्य के पास रह ही क्या जाता है ? अतः मनु जी महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥

(मनु० अ० ४ श्लोक ५६)

विष्ठा (मल), थूक, खकार, कुल्ला वा मल मूत्र युक्त वस्तु, रक्त (खून) और विष वा विषैले पदार्थ भी जल में न डाले।

जल जैसे पवित्र पदार्थ में जिस के लिए **"जलं वै जीवनम्"** जल प्राणिमात्र के जीवन का आधार है, यह कहा है उस में मल मूत्र आदि गन्दे पदार्थ, इसी प्रकार रक्तादि अभक्ष्य और विषैले पदार्थ डालना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? जिस जल को भगवान् ने शिवतम रस कहकर जल की श्रेष्ठता और गुणों का बखान किया है उसमें उपर्युक्त दूषित पदार्थ डालकर उसे मलिन करना किसी विचारशील व्यक्ति की बुद्धि में कैसे आसकता है ? जल तो परम औषध और माता के समान रक्षा करनेवाला अमृत है। इसके सदुपयोग से मनुष्य किस प्रकार कितना परम लाभ उठा सकता है ? इसे स्नान के प्रकरण में देखने की कृपा करें।

दूरादावस्थान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत्॥

(मनु० अ० ४ श्लोक १५१)

मल मूत्र का त्याग, पैर धोना वा जूठन का फेंकना आदि कार्य घर वा निवास स्थान से दूर ही करे।

जो वस्तुएं गन्दी वा दुर्गन्धयुक्त हैं उनको निवासस्थान से दूर ही फेंकने में

मनुष्य का हित है। यह तो सब ही जानते हैं कि दुर्गन्ध से रोग फैंलते हैं और रोगों से मनुष्य के बल, बुद्धि, आयु, सुन्दरता आदि सभी श्रेष्ठ गुणों और शक्तियों का नाश और ह्रास होता है अतः जितना भी दूर इनको फेंका जाये वा त्याग किया जाये उतना ही हितकर है। हमारे प्राचीन पुरुष इसीलिए निवासस्थान से एक दो मील दूर जाकर शौच वा मल का त्याग किया करते थे। इसलिए वे स्वास्थ्य, बल, शक्ति आदि में सब प्रकार से हमारी अपेक्षा अत्यधिक उन्नत थे। हमें भी अपने ऋषियों की उपर्युक्त आज्ञाओं का श्रद्धा से पालन करना चाहिए। मल-मूत्र के त्यागसम्बन्धी उपर्युक्त नियम ब्रह्मचारी क्या सभी स्वास्थ्यप्रेमी सज्जनों के लिए एक समान हैं। हमारे परम पावन ऋषि और महर्षियों की आज्ञा श्रेष्ठ और महान् है, उसी के अनुसार चलने में हमारा कल्याण है। हम क्षुद्रबुद्धि मनुष्यों का क्या अनुभव और क्या ज्ञान है। किसी भी विषय में देखें हमारे प्राचीन पुरुषाओं ने कितनी खोज और अनुभव किया है।

प्रिय पाठकगण! आओ आओ, अपने प्राचीन ऋषियों की शरण में आओ, उनके ज्ञान और अनुभव से अपरिमित लाभ उठाओ, और जन्मजन्मान्तर तक गद्‌गद् होकर उनके गुण गाओ।

ओ३म् शान्ति।